

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 12: भक्तियोग

2/2 (श्लोक 11-20), शनिवार, 11 मार्च 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/jJFhqPN4Gmc>

भक्त के लक्षण

आज का सत्र ईश्वर की प्रार्थना, दीप प्रज्वलन, सद्गुरु गोविन्ददेव गिरि जी महाराज का वन्दन करने के साथ आरम्भ हुआ। भगवान श्रीकृष्ण ने दैवी संपदा प्राप्त व्यक्ति के लक्षण बताते हुए कहा कि श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तियोग बहुत ही सुन्दर अध्याय है जिसमें भक्तिरस की धारा बहती है, जिससे हम लोगों का भक्ति मार्ग आलोकित होता है और उसका पथ प्रदर्शित हो जाता है।

आगे श्लोक आठ, नौ और दस में भगवान ने भक्ति करने वाले भक्त को किस रास्ते पर चलना चाहिए वो रास्ता बताना आरम्भ किया।

श्रीभगवान कहते हैं-

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं(न) निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्व(न) न संशयः॥

तू मुझ में अपने मन को पूरी तरह स्थापित कर और जो तेरा धर्म है उसका पूरी तरह से पालन कर। यदि कोई व्यक्ति इन दोनों (मन और बुद्धि) का पूरी तरह मेरे अंदर निवेश करता है तो जीवन के किसी भी पड़ाव में उसकी ऊर्ध्व गति निश्चित ही होगी। जैसे- छात्र का कार्य है पढ़ना। स्वाभाविक रूप से पढ़ाई के समय मन और बुद्धि दोनों का साथ रखना आवश्यक है, नहीं तो शिक्षक पढ़ा रहे हैं और बुद्धि तो उधर है लेकिन मन कहीं और चला गया तो प्रगति कैसे होगी। इसलिए छात्र को मन और बुद्धि दोनों वहाँ लाने ही पड़ेंगे। इसी प्रकार से कोई अगर कोई व्यवसायी है या गृहिणी है तो दोनों को अपने-अपने काम में मन और बुद्धि लगानी पड़ेगी। रोटी तवे पर डाल दी और मन व्हाट्सएप पर है तो रोटी अच्छी नहीं बनेगी, फिर यश की प्राप्ति कैसे होगी? ये तो छोटे-छोटे यश हैं, अन्तिम यश तो मोक्ष की प्राप्ति है। अगर मोक्ष की प्राप्ति के लिए भक्ति करनी है तो मन और बुद्धि का साथ होना अति महत्वपूर्ण है।

श्रीभगवान आगे कहते हैं-

अथ चित्तं(म) समाधातुं(न) न शक्नोषि मयि स्थिरम्।

अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं(न) धनञ्जय।।

यदि तू अपना मन और बुद्धि मेरे अंदर स्थिर करने में समर्थ नहीं है तो एक काम कर, अभ्यास कर। प्रारंभ में थोड़े समय अर्थात् एक मिनट, दो मिनट या पाँच मिनट से अभ्यास शुरू किया जा सकता है। समय महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी देर भी उपासना करें, मन और बुद्धि को एक कर पूरी श्रद्धा के साथ, समर्पण के साथ करें। मन प्रेम भाव से भर जाये, रोम-रोम पुलकित हो, मन आनन्द से इतना भर जाये कि आँखों से आँसू बह जाएं, इतना मन एकाग्र होना चाहिए।

एक जगह तो भगवान ने कहा भी है कि बहुत पूजा की अपेक्षा नहीं मुझे।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्रामि प्रयतात्मनः।।

मुझे पत्र, पुष्प चढ़ा दो, अगर ये भी नहीं हैं तो जल चढ़ा दो, कुछ भी नहीं है तो मन का भाव मात्र चढ़ाने से भगवान प्रसन्न हो जाते हैं। पूजा में हमारा मन तो रहता नहीं है। मुझे दफ्तर जाना है, घर में मेहमान आये हैं, रसोई बनाना है, आदि-आदि। मन तो स्थिर है ही नहीं पूजा का फल कहाँ से मिलेगा। मन को स्थिर करने में साँसों का गहरा सम्बन्ध है। साँसों को सम करें, प्रत्येक साँस में भगवान का ध्यान प्रार्थना के साथ करें। मन स्थिर होगा, एकाग्र होगा। मन और साँस का गहरा सम्बन्ध है। कोई नकारात्मक सन्देश सुनने से साँसे फूलने लगती हैं। जैसे मन की नकारात्मकता साँसों को प्रभावित करती है, उसी प्रकार साँसों का नियन्त्रण मन को नियन्त्रित करता है। आज ही से प्रार्थना के समय यह आरम्भ कर दें। गुरु मंत्र समझ कर, अंदर जाती हुई साँस के समय एक मंत्र और बाहर निकलती हुई साँस के साथ दूसरा मंत्र। सिर्फ प्रार्थना के समय ही नहीं हर अच्छे कार्य करने से पहले इसका अभ्यास करें, चाहे परीक्षा दे रहे हो या साक्षात्कार हो।

श्रीभगवान आगे कहते हैं-

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।

मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।

यदि तू अभ्यास में भी असमर्थ है तो तू जो भी काम कर रहा है, वह मेरा ही समझ कर कर। जो भी कर्म कर रहा है वह मेरे लिए कर। पढ़ाई कर रहे हो तो ऐसा सोच कर करो कि भगवान के लिए कर रहे हो। रसोई बना रहे हो तो इस भाव से बनाओ कि भगवान का भोग बना रहे हो।

12.11

अथैतदप्यशक्तोऽसि, कर्तुं(म) मद्योगमाश्रितः।

सर्वकर्मफलत्यागं(न), ततः(ख) कुरु यतात्मवान्॥11॥

अगर मेरे योग (समता) के आश्रित हुआ (तू) इस (पूर्व श्लोक में कहे गये साधन) को भी करने में (अपने को) असमर्थ (पाता) है, तो मन इन्द्रियों को वश में करके सम्पूर्ण कर्मों के फल की इच्छा का त्याग कर।

विवेचन- सब कर्म फल का त्याग करना शुरू कर दो। बिना किसी अपेक्षा के अपने कर्म फल का त्याग करोगे यह सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु कर्म फल का त्याग होता क्या है ये भी पता नहीं? जो भी काम करो, उद्योग करो वो मेरे लिए करो। मन को शान्त करने का कोई उपाय है तो वह है कर्म फल का त्याग। अगर कोई छात्र इस भाव से अध्ययन करता है कि मुझे पञ्चानवें प्रतिशत अंक चाहिए तो ये तो कर्म फल का त्याग नहीं है, इससे तो अपेक्षा जुड़ गयी है, उसमें सफलता नहीं मिलेगी।

अभी परीक्षा का समय है। पिछले दिनों एक दसवीं की बच्ची का संवाद आया। वह अपने माता-पिता से कहती है कि आपकी अपेक्षा परीक्षा में पञ्चानवें की है वह मुझसे नहीं हो सकता है। मैं आप से बहुत प्यार करती हूँ। मैं आपको छोड़कर जा रही हूँ,

मुझे क्षमा करें। हमारे अपने बच्चे से भी अपेक्षाएं जुड़ी हुई हैं, उन्हें तक हमने नहीं छोड़। हमें बस यह देखना चाहिए कि वह परिश्रम कर रहा है या नहीं?

भगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है जो हम बचपन से सुनते हुए आ रहे हैं-

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥**

कर्म करता चला जा, फल की अपेक्षा मत कर, लेकिन कर्म पूरी शक्ति के साथ करें। पूरी प्रमाणिकता के साथ, मन और बुद्धि साथ लगा कर करना चाहिए। जिस समय कर्म फल का त्याग होता है, प्रयास और अधिक होता है, उत्तम होता है। अगर प्रयास उत्तम है तो फल तो अच्छा होगा ही। भगवान ने कभी ये नहीं कहा है कि फल नहीं मिलेगा।

एक बंदरों की टोली आम के बगीचे में आम खाने आ गई। बगीचे के माली ने देख लिया। उसने एक डण्डा उठाया और बहुत पिटाई की। सभी बंदर भाग खड़े हुए। वे सभी एक नदी के पास इकट्ठा हुए। उनमें से एक वृद्ध बंदर ने कहा मुझे पता है, आम कैसे उगाया जाता है। हम अपने लिए आम का बगीचे बनायेंगे। सभी बंदरों ने आम की गुठलियाँ एकत्रित की और नदी के किनारे खाली जगह देखकर आम का बीज लगा दिया। हर दिन नदी से नारियल की खोपड़ी से पानी लाकर डालते। कुछ दिन बीत जाने पर बेचैनी से पूछा आम कब आएँगे? वृद्ध बंदर ने कहा पहले मूल आएगी फिर अंकुर। कुछ दिन बाद खोदकर देखा मूल आ रही थी। फिर दो सप्ताह बीत जाने पर देखा। ऐसा बेसब्री से चार-पाँच बार किया। सभी मूल और अंकुर नष्ट हो गए। सब्र नहीं था, शीघ्र ही फल की अपेक्षा थी। भगवान ने ये कभी नहीं कहा है कि तुम कुछ मत करो। सोये हुए अर्जुन को जगाने के लिए ही श्रीमद्भगवद्गीता कही गई। कर्म फल का त्याग कर कार्य करना है। अगर भक्ति का अंकुर लाना है तो त्याग जरूरी है।

12.12

**श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्, ज्ञानाद्ध्यानं(वँ) विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागः(स), त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥12.12॥**

अभ्यास से शास्त्रज्ञान श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है (और) ध्यान से (भी) सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग (श्रेष्ठ है)। क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

विवेचन- शान्ति को प्राप्त करना है तो त्याग करना सीखें, शान्ति त्याग के पीछे-पीछे चलती है। भगवान कहते हैं कि बिना मर्म जाने अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है। एक ज्ञान है दूसरा विज्ञान। विज्ञान यानि विशेष ज्ञान, वो परिवर्तनशील होता है अर्थात् बदलता रहता है। जैसे- आपने नया-नया मोबाइल खरीदा। इससे पहले भी मोबाइल थे, इससे निम्न स्तर के थे। यह बदलाव हुआ, परिवर्तन हुआ। पहले ट्रंक कॉल, फिर एस टी डी, पेजर, टू जी, थ्री जी, फोर जी और अब फाइव जी।

श्रीमद्भगवद्गीता आज से साढ़े पाँच हजार साल पहले कही गयी। वो आज भी वैसी ही है जो साढ़े पाँच हजार साल पहले थी और कल भी वैसी ही रहेगी। इसका कारण ज्ञान है। ज्ञान शाश्वत है, सनातन है। ज्ञान अपरिवर्तनशील है, इसलिये बिना मर्म जाने अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है और ज्ञान से भी ईश्वर का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी कर्म फल का त्याग अधिक श्रेष्ठ है। कर्म फल के त्याग के साथ ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है। अगर हमारे जीवन में कहीं अशान्ति है तो इसका कारण हमारे मन में फल की आकांक्षा ही है। हमारे मन में सदैव फल की आकांक्षा रहती है।

महिला मण्डल की बैठक हुई, बैठक में चर्चा हुई। महिला मण्डल की चर्चा जो समाचार पत्र में आई उसमें मेरा नाम नहीं था, इसके लिए भी विवाद होता है। मैंने ऐसा किया है तो मुझे वैसा मिलना चाहिए। समाचार पत्र को कौन ध्यान रखता है परंतु समाज सेवा करने गए वहाँ भी अपेक्षा रहती है। भगवान ने कहा है; अपेक्षा ही सभी समस्याओं का मूल कारण है।

**अद्वेष्टा सर्वभूतानां(म्), मैत्रः(ख) करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः(स), समदुःखसुखः क्षमी॥13॥**

सब प्राणियों में द्वेषभाव से रहित और मित्र भाव वाला (तथा) दयालु भी (और) ममता रहित, अहंकार रहित, सुख दुःख की प्राप्ति में सम, क्षमाशील, निरन्तर सन्तुष्ट, योगी, शरीर को वश में किये हुए, दृढ़ निश्चयवाला, मुझ में अर्पित मन बुद्धि वाला जो मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है। (12.13-12.14)

विवेचन- सारे भूतों से द्वेष रहित भावना अर्थात् किसी भी प्राणी के प्रति द्वेष की भावना नहीं हो। कैसे रहेगी? जब फल की आकांक्षा ही नहीं है। जो सभी लोगों के लिए, सभी प्राणियों के लिए किसी भी प्रकार का द्वेष नहीं रखता हो, जिसके मन में सभी जीवों के लिए मैत्री और करुणा का भाव हो और वो **मम्** नहीं कहता है, उसका अहंकार गल जाता है अर्थात् अहंकार से मुक्ति मिल जाती है। वह निरहंकारी बन जाता है। दुःख में और सुख में सम रहता है।

हमारे यहाँ गुरुद्वारों में ऐसा भाव देखने को मिलता है। (निरहंकार) भक्त गुरुद्वारे के बाहर सभी भक्तों के जूतों को सुन्दर भाव से साफ करता है। भगवान का कार्य समझकर करता है। ज्ञानी जेल सिंह ने राष्ट्रपति रहते हुए भी गुरुद्वारे के बाहर सभी भक्तों के जूते साफ किये थे।

जब हम सीना तान कर चलते हैं तो मुझमें अहंकार आता है। जब हम झुकते हैं तो अहंकार से मुक्ति मिलती है। जब हम सूर्य नमस्कार करते हैं तो ऊपर उठते समय साँस भरते हैं, झुकने की स्थिति में साँस को बाहर निकालते हैं। भगवान कहते हैं कि जितने भी प्राणी मात्र हैं, किसी के प्रति मन में द्वेष न हो। मन के अंदर मैत्री का भाव हो, करुणा का भाव हो। बिना किसी कारण के दया का भाव हो। सबका मंगल हो, सबका भला हो, ऐसा भाव होना चाहिए। मन में किसी के लिए भी बुरा भाव न आए। सबका भला हो ऐसी मन में चाह हो।

अहम् को मन से निकाल दें। मैंने यह किया, मैंने वह किया ऐसा नहीं है। जब हम नहीं थे तब भी सब कार्य हो रहे थे, जब हम नहीं रहेंगे तब भी सब कार्य होते रहेंगे। हमारे आने-जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसमें समत्व आ जाने पर आनन्द की प्राप्ति होती है। योग का दूसरा अर्थ है समत्व।

**सन्तुष्टः(स) सततं(यँ) योगी, यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः(र), यो मद्भक्तः(स) स मे प्रियः॥12.14॥**

विवेचन- आप जो भी कार्य करेंगे संतुष्टि से करेंगे, आनन्द के भाव से करेंगे। अगर हम स्वयं के साथ संतुष्ट रखना सीख जाते हैं तो क्रोध, मोह और अहंकार से मुक्ति मिल जाती है, हम योगी की तरह होने लगते हैं।

हमने देखा है; शादी में जाते हैं तो लोग छोटी-छोटी कमियाँ निकालते रहते हैं। यह खान-पान ठीक नहीं है, यह व्यवस्था ठीक नहीं है। अगर हम अच्छाई देखें तो बहुत-सी मिल जाएगी। एक कागज जिस पर एक काला धब्बा है तो हम यही कहेंगे कि एक काला धब्बा है। पूरा कागज साफ है, सुंदर है परंतु हम यह देखने की कोशिश ही नहीं करते हैं।

मैं एक बहुत बुजुर्ग महिला से मिला। उनका जीवन हमेशा अभाव में गुजरा है। लेकिन जब उन्हें देखता हूँ, उनसे मिलता हूँ, उनके चेहरे पर जो आभा, तेज और आत्मसंतुष्टि दिखती है वो आत्मविभोर, मन्त्रमुग्ध कर देती है। अगर मैं संतुष्ट हो रहा हूँ तो भगवान को प्रिय होता जा रहा हूँ।

**यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकात्रोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैः(र), मुक्तो यः(स) स च मे प्रियः॥15॥**

जिससे कोई भी प्राणी उद्विग्न (क्षुब्ध) नहीं होता और जो स्वयं भी किसी प्राणी से उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्या), भय और उद्वेग (हलचल) से रहित है, वह मुझे प्रिय है।

विवेचन- भगवान् बताते हैं कि मेरे भक्तों में और क्या गुण होते हैं-

जिसके कारण किसी दूसरे प्राणी को कोई पीड़ा नहीं पहुँचती हो। जो हर्ष (क्षणिक आनंद की अनुभूति), अमर्ष (क्षणिक दुःख / जिसे दूसरों की प्रगति पर दुःख हो), उद्वेग (reactive होना, न सुनने की आदत नहीं होना) और भय से मुक्त रहता है, वह मुझे बहुत प्रिय है।

जब रेलवे स्टेशन पर किसी ट्रेन का इंतजार कर रहे होते हैं और उद्घोषक उद्घोष करता है- ट्रेन पाँच घंटे विलम्ब से चल रही है, देरी के लिए मुझे खेद है, उसे तनिक भी खेद नहीं होता। यात्री तब क्षणिक खेद महसूस करते हैं। जब ट्रेन आ जाती है तो यह क्षणिक खेद हर्ष में परिवर्तित हो जाता है। भगवान् कहते हैं- जो हर्ष, अमर्ष, भय व उद्वेग इन चारों को छोड़ देते हैं, ऐसे भक्त मुझे अत्यंत प्रिय है।

12.16

**अनपेक्षः(श) शुचिर्दक्ष, उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी, यो मद्भक्तः(स) स मे प्रियः॥16॥**

जो अपेक्षा (आवश्यकता) से रहित, (बाहर-भीतर से) पवित्र, चतुर, उदासीन, व्यथा से रहित (और: सभी आरम्भों का अर्थात् नये-नये कर्मों के आरम्भ का सर्वथा त्यागी है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

विवेचन- जो अपेक्षा से रहित है। किसी ने कुछ कर दिया तो खुश हो जाए और अगर किसी ने कुछ नहीं किया तो दुःखी होने का कोई कारण नहीं है। जब हम यह अपेक्षा करते हैं कि वह कुछ नहीं करेंगे और वह कर देते हैं तो मन बहुत प्रसन्न हो जाता है।

अंतर में निर्मलता, सावधानी, तटस्थता रखना और दुःखों से मुक्त हो जाना चाहिए। हमें भाव बदलना है, दृष्टिकोण बदलना है। जिंदगी में कोई भी दुःख आए वो क्षणिक होता है। दुःख से बाहर निकलना आना चाहिए, तब हमारा सुख और दुःख में सम रहना प्रारम्भ हो जाता है। सुख और दुःख हमारे अन्दर नहीं हैं। ये तो बाहर ही स्थित हैं जो समय के साथ नष्ट हो जाते हैं। परिवार में किसी का स्वर्गवास हो जाने से, जीवन में आया सबसे बड़ा दुःख समय के साथ कम हो जाता है। दो-तीन साल और बीतने के बाद नाम मात्र का रह जाता है। सुख भी जो पाँच साल पहले भोगा था वो भी खत्म हो गया। सुख और दुःख दोनों ही क्षणिक हैं। इसलिये न सुख में हर्ष करें, न दुःख में क्रोध करें। हम सुख-दुःख में सम रहें। अंदर तो केवल आनन्द है। यह बाह्य सुख-दुःख हमें आनन्द तक पहुँचने में बाधक हैं। कभी-कभी भगवान् हमें कोई कष्ट देते हैं तो हम भगवान् को कोसने लगते हैं, ऐसा हमारे साथ ही भगवान् क्यों करते हैं। भगवान् किसी से बैर नहीं करते हैं, वो हमारी अच्छाई के लिए ऐसा करते हैं। हमें सेवा का अवसर देते हैं।

12.17

**यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्यः(स) स मे प्रियः॥17॥**

जो न (कभी) हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है (और) जो शुभ-अशुभ कर्मों से ऊँचा उठा हुआ (राग-द्वेष रहित) है, वह भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है।

विवेचन- यह मैंने किया इस अहंकार का त्याग करना है। तुम्हें निमित्त मात्र बनाया गया है, अगर तुम नहीं करोगे तो कोई और कर देगा। हे अर्जुन! मुझे ऐसा व्यक्ति प्रिय है जो कभी न हर्षित होता है न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है और जिसने शुभ-अशुभ कर्मों का त्याग किया हुआ है। अर्जुन दुर्योधन को युद्ध में मारने वाले हैं परंतु यह अशुभ कर्म नहीं है। यह एक क्षत्रिय का कर्तव्य है। जो कार्य विवेक के साथ, कर्तव्य की भावना से किया जाए वह अशुभ नहीं होता, इसका दोष भी उसे नहीं लगता। वह भक्तिवान् मनुष्य मुझे प्रिय है।

12.18

**समः(श) शत्रौ च मित्रे च, तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः(स) सङ्गविवर्जितः॥18॥**

(जो) शत्रु और मित्र में तथा मान-अपमान में सम है (और) शीत-उष्ण (शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता) तथा सुख-दुःख (मन बुद्धि की अनुकूलता-प्रतिकूलता) में सम है एवं आसक्ति रहित है (और) जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला, मननशील, जिस किसी प्रकार से भी (शरीर का निर्वाह होने न होने में) संतुष्ट, रहने के स्थान तथा शरीर में ममता आसक्ति से रहित (और) स्थिर बुद्धिवाला है, (वह) भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है। (12.18-12.19)

विवेचन- जो शत्रु और मित्र को समान समझे, मान और अपमान में सम हो। सदी और गर्मी तथा सुख और दुःख में सम हो, जो आसक्ति(ममता) रहित है, संतुष्ट है, द्वंद्व से परे है, वह स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति मुझे प्रिय है। बुद्धि और मन के मध्य चलने वाले द्वंद्व से मुक्त होना ही भक्ति मार्ग पर अग्रसर करता है।

12.19

**तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी, सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः(स) स्थिरमतिः(र), भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥19॥**

विवेचन- भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन! निन्दा और स्तुति में भी तू सम हो जा। संतुष्ट रहने का हमें अभ्यास करना होगा। संतुष्टि की धारा हमें अंदर से हर्षित कर देती है, रोमांचित कर देती है। यह संतुष्टि हमें भक्ति से प्राप्त होती है। भक्ति हमें अंदर से निर्मल बनाती है, हमारे रोम-रोम को हर्षित कर देती है, इसलिए संतुष्ट रखना सीखें, मौन रखना सीखें, स्थिर रखना सीखें।

एक बार एक भक्त ने भगवान् बुद्ध के ऊपर थूक दिया। उनके शिष्य अत्यंत क्रोधित हो रहे थे लेकिन भगवान् बुद्ध ने कहा, और कुछ कहना है? भगवान् बुद्ध की इस बात पर भक्त को आत्म ग्लानि हुई। दूसरे दिन वह पुष्पहार लेकर आया। भगवान् बुद्ध ने फिर कहा, और कुछ कहना है? उनके लिये दोनों स्थितियाँ समान थीं।

12.20

**ये तु धर्म्यामृतमिदं(यँ), यथोक्तं(म्) पर्युपासते।
श्रद्धधाना मत्परमा, भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥12.20॥**

परन्तु जो (मुझ में) श्रद्धा रखने वाले (और) मेरे परायण हुए भक्त इस धर्ममय अमृत का जैसा कहा कहा है, (वैसा ही) भली भाँति सेवन करते हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

विवेचन- श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! मुझमें श्रद्धा रखने वाले और मेरे परायण हुए जो भक्त इस धर्ममय अमृत को जैसा कहा है वैसा ही भली-भाँति सेवन करते हैं। वे भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

समापन प्रार्थना के साथ विवेचन सत्र समाप्त हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरंभ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- आकांक्षा जी

प्रश्न- सभी में भगवान निवास करते हैं फिर भी मेरा भाई झूठ बोलकर मुझ पर आरोप क्यों लगाता है (जबकि मैंने कप को तोड़ा ही नहीं)?

उत्तर- आपको पता है कि वो झूठ बोल रहा रहा है। आप रिमोट कण्ट्रोल की तरह व्यवहार न करें, अपनी माता को सच बता दें और मौन रहें, विवाद में न फँसे। आप देखेंगे कि उसे अपराधबोध होगा और वह स्वयं स्वीकार करेगा।

प्रश्नकर्ता- शशि जी

प्रश्न- मुझे संस्कृत नहीं आती है, मुझे लगा कि गीता सीखनी चाहिए। क्या यह संभव है?

उत्तर- मैंने ऐसे भी साधक देखे हैं जिन्हें अक्षर ज्ञान नहीं था, जो बिल्कुल भी पढ़-लिख नहीं सकते थे। उन्होंने भी अंगुली रखकर आरम्भ किया और अच्छा परिणाम आया। आज तो गीता परिवार अनुपठन के लिए रिकॉर्ड किया हुआ ऑडियो और विडिओ, साथ ही सरल पठनीय श्रीमद्भगवद्गीता श्लोक का इमेज उपलब्ध कराता है। देखकर और सुनकर अभ्यास करते रहें, अवश्य ही सुन्दर परिणाम आएगा।

प्रश्नकर्ता- अलका जी

प्रश्न- सर्वप्रथम बारहवाँ अध्याय हमें क्यों पढ़ाया जाता है?

उत्तर- बारहवाँ अध्याय भक्तियोग है। अगर इस एक अध्याय का पाठ ही नित्य किया जाये तो भी पर्याप्त है। साथ ही यह छोटा है एवं उच्चारण की दृष्टि से सरल है। स्वामी गोविन्ददेव गिरि जी के निर्देशानुसार ऐसा पाठ्यक्रम बनाया गया जो सुन्दर, सरल और व्यवस्थित हो, जिसे सभी रुचि से सीखें।

प्रश्नकर्ता- सुमित्रा जी

प्रश्न - कण्ठस्थ करने की सुंदर विधि क्या है ?

उत्तर- आस्था और जिज्ञासा के साथ आप भी गीता पढ़, समझ और कंठस्थ कर सकते हैं। कठिन लगने वाले इस कार्य को लर्न गीता वेबसाइट के माध्यम से गीता परिवार ने सरल और सुगम कर दिया है। सिर्फ श्रद्धा, विश्वास और दृढ़ निश्चय के साथ अभ्यास करते रहना है। अवश्य ही सुन्दर और अच्छा परिणाम आयेगा ।

इसके साथ ही इस सत्र का समापन हुआ।

**ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः॥**

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'भक्तियोग' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करें।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ॥

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥